रीति-रिवाज जो स्त्रियों को कमजोर बनाते हैं

सुहास कुमार

यह बात बहुत साफ है कि हमारे सामाजिक व धार्मिक रीति-रिवाज स्त्रियों के खिलाफ हैं। हमारे पूर्वज मनु ने जिनके बनाए सामाजिक नियम आज तक लागू हैं, सदियों पहले स्त्रियों का भाग्य लिख दिया था। उन्हें वेद पढ़ने की मनाही थी। उस समय शिक्षा के स्रोत वेद ही थे। "स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं रह सकती। उसे बचपन में पिता के आधीन, जवानी में पति के आधीन और बुढ़ापे में बेटों के आधीन रहना होगा वरना समाज में अनाचार फैलेगा।"

स्त्री की आदर्श भूमिका मां और पत्नी के रूप में है जिसका मतलब है कि हर लड़की का ब्याह जरूर होना चाहिए। यदि वह ज्ञान-विज्ञान या कला-कौशल के क्षेत्र में, अथवा समाज सेविका के रूप में काम करे तो वह सम्मान की अधिकारी नहीं मानी जाती।

बचपन से भेदभाव

लड़की के जन्म पर खुशी के बजाए सांत्वना दी जाती है—"चलो, अगली बार बेटा हो जाएगा।" हर कदम पर उसे एहसास कराया जाता है कि वह लड़की है, इसलिए वह भाई से हीन है। खान-पान और शिक्षा-दीक्षा सब में भेद बरता जाता है। शुरू से उसे समझाया जाता है कि ससुराल में उसे समझौते करने ही होंगे। उसमें सहनशीलता आनी चाहिए और अपनी इच्छाओं को दबाकर रखना चाहिए। नौकरी करनी नहीं, इसलिए शिक्षा, कला-कुशलता की कोई जरूरत नहीं। शुरू से ही उसे कमजोर और अपंग बना दिया जाता है।

लड़की के कदम भटकेंगे तो समाज उसे माफ़ नहीं करेगा। कुलटा, कलंकिनी और वंश की इज्जत डुबाने वाली जैसे विशेषण उसे दिए जाएंगे। लड़की निर्दोष हो और बलात्कार का शिकार हो तो भी दोषी वही है। 'तू अकेली घर से क्यों निकली थी? तू फलां जगह क्यों गई थी? तू चिल्लाई क्यों नहीं? तू मर क्यों नहीं गई?' उसे आत्महत्या तक करने पर मजबूर कर दिया जाता है या घर से निकाल दिया जाता है।

बेटी से घर के सब काम करने की अपेक्षा की जाती है। यदि बेटे ने घर का कोई काम किया भी तो उसे मना कर दिया जाता है। "अरे छोड़, यह काम लड़कियों का है।" बहनों पर रौब गांठना, उनसे खाना पकवाने, कपड़े धुलवाने आदि कामों से सामाजिक ढांचा तो बनता ही है, पुरुष के अहम को भी बढ़ावा मिलता है। आगे चलकर वही पति-पत्नी के संबंधों में स्त्री की स्थिति बहुत हीन बना देता है।

प्रतिबंधों की शिकार

यौन संबंधी प्रतिबंध और आदर्श स्त्रियों के लिए ही हैं। पुरुष चाहे जितने संबंध रखे, एक से ज्यादा पत्नियां रखे, वैश्याओं के कोठे पर जाए, उसकी इज्जत नहीं बिगड़ेगी। वह बुढ़ापे में भी ब्याह कर सकता है, जबकि बाल-विवाह, विधवा का फिर से ब्याह न हो सकना, दहेज प्रथा, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, देवदासी (जोगन) प्रथा स्त्री को कमजोर बनाती हैं।

बाल विवाह से लड़कियों के विकास के दरवाजे बंद हो जाते हैं। काफी समय पहले तक विधवाओं को काशी भेज दिया जाता था जहां पुजारी-पंडे और समाज के कथित प्रतिष्ठित लोग उनका जी भरकर यौन-शोषण करते थे।

घर की जिम्मेदारी, बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी, वंश की इज्जत की जिम्मेदारी सब

स्त्रियों की है। उन्हें अनेक तरह के बंधनों में जकड़ दिया जाता है। सब व्रत-त्यौहार और धार्मिक रीति-रिवाज उन्हीं के लिए हैं, लेकिन मंदिर का पुजारी पुरुष होगा, यानि कि जिम्मेदारियों का पलड़ा भारी और अधिकार कुछ नहीं।
स्त्रियां अपवित्र होती हैं। अगर विधवा या बांझ है तो शुभ अवसर पर उसका रहना अपशकुन है।

कड़े नियम

स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से जोड़ी पवित्रता मासिक धर्म और प्रसूति में छुआछूत से जुड़ गई। पारसियों में स्त्रियों की स्थिति काफी बराबरी की है। समान शिक्षा के अवसर लड़कियों को दिए जाते हैं, पर मासिक धर्म को लेकर इतने कड़े नियम हैं कि एक जगह मैंने सीढ़ियों पर कुछ हिस्से में पीतल के टुकड़े लगे देखे। पूछने पर पता चला कि मासिक धर्म के दिनों में पैर रखने के लिए हैं।

बौद्ध धर्म में भिक्षुणियां स्वीकार की गईं, पर उन्हें भिक्षुओं से नीचा स्थान दिया गया। इसाई धर्म में स्त्री पथभ्रष्ट करने वाली के रूप में दर्शाई गई है। इस वजह से पत्नी और उसकी संपत्ति पर पति को अधिकार दिया गया।
हिंदू धर्म में स्त्री को पुरुष की संपत्ति ही माना गया है। उसकी देख-रेख और रक्षा के नाम पर पुरुष ने उसे अपने आधीन रखा है। संपत्ति उसके नाम न होना उसे सबसे ज्यादा कमजोर बनाता है।
पति जब चाहे उसे घर से बाहर निकाल सकता है, क्योंकि घर पति का है। पति की छत्र-छाया में रहने के नाम पर स्त्रियां शायद सबसे ज्यादा अत्याचार सहती आई हैं।

सब व्रत-त्यौहार स्त्रियों के लिए बने हैं।
पति और बेटे की लंबी उम्र के लिए व्रत।
अच्छा पति पाने के लिए व्रत, (लड़का) न होने पर उसके लिए व्रत आदि। धर्म को चलाना उसकी जिम्मेदारी है, पर जब अधिकार या तलाक का सवाल उठता है तब उसे नहीं दिया जाता।

बदलाव कैसे ?

आज हमारे सामने बहुत बड़ा सवाल है कि क्या हम इन रीति-रिवाजों को चलने देना चाहती हैं ? क्या हम सदा किसी के सहारे, किसी की छाया बनकर रहना चाहती हैं ? क्या हमें अपने आप में मजबूत नहीं बनना, ताकि यदि किसी वजह से सहारा न मिले तो भी हम जी सकें ?
जीने का मतलब अपनी इच्छाओं को पूरा कर सकना है, न कि सदा दूसरों के हिसाब से चलना।

यह मिथक है कि पुरुष स्त्रियों की रक्षा करते हैं। क्या द्रौपदी के पांच पति, ससुर, ददिया ससुर, गुरु व महात्मा द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित होने से रोक सके ? महाभारत में लिखा है कि कृष्ण भगवान ने उसकी रक्षा की। इसका मतलब है कि हम अपनी रक्षा का कवच खुद बना सकती हैं। हमें अपने ऊपर अत्याचार या ज्यादतियों को सहते नहीं रहना चाहिए। हमें अपने काम और मेहनत की कीमत खुद आंक लेनी होगी, तभी दूसरे भी उसे समझेंगे।

घर में किए जाने वाले काम, जैसे पानी लाना, ईंधन जुटाना, खाना बनाना, सफाई करना, बच्चों की देख भाल करना, जानवरों को चारा-पानी देना, पति के धंधे में मदद करना आदि बाहर का कोई व्यक्ति करे तो उसे पैसे देने पड़ेंगे। यदि आप यही सब काम दूसरे के घर जाकर करें तो आपको मजदूरी मिलेगी। फिर अपने घर में इन कामों की कीमत क्यों नहीं आंकी जाती ?

अगर 90 फी सदी औरतें अपने पतियों से मार खाती हैं तो वह एक-एक घर की समस्या कैसे है ? अगर उन्हें ससुराल वालों द्वारा शारीरिक या मानसिक रूप से सताया जाता है तो यह घरेलू समस्या कैसे रह गई ? पति आवारा है या काम नहीं करता या पत्नी को छोड़ देता है, या वह विधवा हो जाती है या पति दूसरी औरत ले आता है या किसी कारण स्त्री घर छोड़ने पर मजबूर होती है, तो वह सम्मानपूर्वक क्यों नहीं रह सकती ?

बहनों के नाम एक निमंत्रण-पत्र

प्रिय बहनो,

कालीकट (केरल, दक्षिण भारत) में 28 से 31 दिसंबर 1990 तक एक अखिल भारतीय महिला सम्मेलन होगा। हमें आशा है कि बड़ी संख्या में बहनें और महिला समूह इसमें भाग लेंगे।

राष्ट्रीय स्तर पर पहले दो बार बंबई (1980 और 1985) में और तीसरी बार पटना (1988) में महिला समूह मिल चुके हैं। इन सम्मेलनों में बलात्कार, घरेलू हिंसा और अत्याचार, वैश्यावृत्ति, स्त्रियां और कामकाज तथा कानून में सुधार आदि के मुद्दों पर बातचीत की गई।

इस बार चर्चा के मुख्य मुद्दे होंगे—

- स्त्रियां और राजनीति
- धार्मिक रूढ़िवाद व जातिवाद
- स्त्रियों के आंदोलन का स्वास्थ्य संबंधी नज़रिया
- नारीवाद और स्त्रियों पर अध्ययन
- स्त्रियों के आंदोलन का सांस्कृतिक पहलू
- संचार साधन
- स्त्रियां और राष्ट्रीय योजना नीति
- स्त्रियां और संपत्ति संबंधी कानून
- स्त्रियों के प्रति हिंसा।

सम्मेलन में हिस्सा लेने वालों के रहने व खानपान के खर्चे के लिए बहनों से चंदा भेजने का अनुरोध है। महिला समूह 500 रु० से 1,000 रु० नकद या अनाज व खाने का अन्य सामान भेजकर सहयोग दें।

रहने के प्रबंध के लिए पैसों की ज़रूरत होगी। छोटे शहरों के समूहों से 500 से लेकर 1,000 रु० तक की राशि या अनाज और खाद्य सामग्री के रूप में योगदान की अपेक्षा की जाती है। इसको सफल बनाने के लिए आपका सहयोग और उपस्थिति ज़रूरी है।

शुभकामनाओं सहित

केरल समन्वय समिति
द्वारा बोधन
28/895 मे डे रोड
डाकखाना—चेरायूर
कालीकट-673017

कमजोर सामाजिक ढांचा

यह सब हमारे सामाजिक और कुछ हद तक राजनैतिक ढांचे का नतीजा है जिसे बदलना होगा। सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि हमारी समस्या अकेले हमारी नहीं है, बल्कि हमारी जैसी 90 प्रतिशत बहनें हैं जिन्हें घर व बाहर लिंग भेद सहना पड़ता है। उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है। समान काम के लिए उसे कम मजदूरी दी जाती है। इसके पीछे भावना यह है कि कमाकर लाने की ज़िम्मेदारी पुरुष की है, स्त्री को कम पैसे मिलने से भी उसका काम चल जाएगा। परन्तु कितने घरों में उसकी कमाई बिना काम नहीं चल सकता? कितने घरों में वह परिवार की मुखिया है और पूरे घर की ज़िम्मेदारी उसकी है, न हो तो भी उसकी मेहनत की कीमत कम क्यों आंकी जाती है? उसे राशन कार्ड क्यों नहीं मिलता? संपत्ति या ज़मीन उसे विरासत में क्यों नहीं मिलती? सरकार उसे ज़मीन क्यों नहीं देती?

ये ही कमज़ोर मांएं जब अपने बच्चों का पालन ठीक तरह नहीं कर पातीं, तो क्या बेटों के रूप में पुरुषों पर उसका असर नहीं पड़ता है? इस सामाजिक ढांचे में बहुएं सताई जाती हैं तो क्या आपकी बेटियां बच जाती हैं? घूम फिरकर गलत सामाजिक ढांचे का असर परिवार के सब सदस्यों पर पड़ता है। मां के पढ़ी-लिखी न होने से क्या बेटे की शिक्षा अधूरी नहीं रहती? क्या उसके शारीरिक मानसिक विकास में अंतर नहीं पड़ता? पत्नी को नीचा मानकर क्या पति उसकी मित्रता और अच्छी सलाह से वंचित नहीं रह जाता?

(इस लेख में अनेक प्रश्न उठाए गए हैं, जिन पर पाठकों की प्रतिक्रियाएं अपेक्षित हैं) □